JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

विवेकानंद की दृष्टि में भारतीय समाज : एक अध्ययन

चन्देश्वर दास चाणक्य
शोधार्थी
समाजशास्त्र–विभाग
ल0ना0मि0वि0वि0, दरभंगा

स्वामी विवेकानंद एक प्रबुद्ध संयासी थे। उनकी हिन्दू धर्म में अगाध श्रद्धा थी विवेकानंद की दृष्टि में धर्म अंधविश्वास, कर्मकांड एवं पाखंड का विषय नहीं है, और न ही जीवन की वास्तविकताओं से परे मंदिर या गुफा में बैठकर एकांत साधना का विषय है। धर्म का तात्पर्य वैसे सिद्धांतो परंपराओं से है जो जीवनदायी है तथा मानव समाज के उत्थान एवं कल्याण में सहायक है।

स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व में समाज व राष्ट्र के उद्धारक की छवि दिखाई पड़ती है। चूँकि विवेकानंद भारतीय समाज की अशिक्षा, अज्ञानता, अंधविश्वास एवं अभावग्रस्त समाज की करूण दशा से परिचित थे इस विषय परिस्थिति में विवेकानंद का प्रमुख कर्तव्य समाज व राष्ट्र का उद्धार करना बन गया।

विवेकानंद अपने प्रवचनों भाषणो संवादों लेखों एवं परोपकार के माध्यम से भारतीय समाज एवं राष्ट्र को समुन्नत एवं उन्नतशील बनाने के लिए जीवन पर्यंत जुटे रहें। इनकी सोंच उनका चिंतन एवं दर्शन सकारात्मक, आशावादी, सर्जनात्मक एवं उत्थान परक था।

स्वामी विवेकानंद के जीवन, विचारों एवं कार्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि उनके जीवन का ध्येय भारतीय समाज को जगाना और आधुनिक युग की सुविधाओं का उपयोग कर वर्तमान काल की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम एवं मानवतावादी समाज का गठन करना था।[1] उनकी दृष्टि में परंपरागत जाति वर्ग आधारित समाज न तो समानतावादी समाज का निर्माण होने दे सकती थी और न ही जनजागरण या आधुनिक चुनौतियों से पार पा सकती थी।

स्वामी जी एक ऐसे समाज की परिकल्पना पर बल दे रहे थे जो जातिविहीन, एवं वर्ण विहीन है। जातिविहीन समाज से तात्पर्य एक ऐसे समाज से था जिसमें जातियां नहीं होगी सभी समान होंगे। सभी स्वतंत्र होंगे और सबों की उन्नति समान रूप से होगी, किसी को भी कोई अभाव नहीं होगा। वास्तव में विवेकानंद समाजिक उद्धारकर्त्ता थे। अपने सोच और कार्य की दिशा व्यक्तियों, वर्गों के जातियों के उन्नयन की थी। उनके आदर्श समाज की परिकल्पना की थी उनके आदर्श समाज की परिकल्पना सभी जातियों की बाह्मण जाति, जो यथार्थ ज्ञान से संपन्न हो और जिसमें सांसारिक भाव न हो, के उत्थान की थी उन्होंने कहा कि – मैं समस्त जातियों को समतल कर डालने के लिए नहीं कहता भारत में हम जाति से चलकर ऐसी अवस्था में पहुँचते है जहाँ कोई जाति ही नहीं है, भारत की यही योजना है कि प्रत्येक जाति को ब्राह्मण बनाया जाए, क्योंकि ब्राह्मण ही मानवता का आदर्श है।''[2]

स्वामी विवेकानंद चाहते थे कि हमारे भारतवासी को भरपेट भोजन मिले, तन ढ़कने को पर्याप्त कपड़ा मिले और यदि हम ऐसा नहीं कर सकते है तो हमें अपनी विद्वता और शास्त्रों के सारे गर्व को दूर कर फेंक देना चाहिए। अपने लिए शक्ति प्राप्त करने के सभी साधनाओं को त्याग दें क्योंकि ये श्रमिक ही राष्ट्र वे मेरूदंड है। इन्हीं की श्रम से अन्न उपजता है और लोगो का जीवन चलता है। यदि ये विकास नहीं करेंगे तो विवेकानंद जी ने लोगो से पूछा कि संसार के समग्र इतिहास के क्या तुमने किसी देश को उठते देखा है, जबतक कि उसके समूचे, शरीर में राष्ट्रीय रक्त का समान रूप से संचार नहीं हुआ है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि उस शरीर के द्वारा कोई भी महान कार्य नहीं किया जा सकता जिसका एक अंग पक्षाघात से ग्रस्त है।

विवेकानंद जी एक ऐसा भारतीय समाज बनाना चाहते थे जो स्वतंत्रता समानता एवं बंधुत्व एकता पर आधारित हो। उनका मानना था कि धर्म का परिष्करण तभी हो सकता है जब भारतीय समाज में जाति उन्मूलन तथा महिलाओं का उत्थान हो ऐसा इसलिए क्योंकि प्राचीन काल में समाज में जन्म व लिंग आधारित भेदभाव धर्म के सभी अर्थों में पालन नहीं करने से उत्पन्न हुई थी।

विवेकानंद के प्रादुर्भाव से पूर्व की देश में सामाजिक सुधार आंदोलन के तहत कई समाज सुधारकों के द्वारा कार्यक्रम चल रहे थे। जिन्हें विवेकानंद जी ने सराहा और कहा कि इनकी तुलना में विकास कार्य पर बल देना चाहिए।

उनका मानना था कि किसी भी व्यक्ति का राष्ट्रीय आदर्श समाज की उन्नति विस्तृति एवं विकास निरंतर चलते रहने से ही संभव है। यदि हम एक ही विचारो या तथ्यों या स्थानों पर स्थिर रहे तो मानव सभ्यता की मृत्यु अनिवार्य हो, हमें अपनी उन्नति स्वयं करनी होगी नहीं तो हमारी अवनति निश्चित है।

उनका मानना था कि हमारे पूर्वजों ने प्राचीन काल में बड़े–बड़े महत्व के कार्य किये हैं। हमे उनकी ओर अग्रसर होना होगा।

विवेकानंद की दृष्टि में जाति उन्मूलन की आदर्श परिकल्पना :–

स्वामी विवेकानंद ने कहा कि भारतीय समाज का उत्थान तब तक नहीं होगा जक तक जाति व्यवस्था समाप्त नहीं हो जाती है। क्योंकि यदि समाज का कोई भी भाग व्यक्तिग्रस्त या पक्षाघात से पीड़ित होगा तो वह समाज उन्नति नहीं कर सकता है। उन्होंने दलितों की ओर इशारा करते हुए कहा कि आज उनकी स्थिति सर्वाधिक दयनीय एवं निरूपाय है। इसलिए आवश्यक है कि सबसे पहले हमे समाज के रोगग्रस्त भाग को ठीक करना होगा तभी हमारी उन्नति संभव होगी।[3]

राष्ट्रीय उत्थान देश में राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार तथा राष्ट्रोत्थान के मार्ग में कुछ दशाएँ बाधक थीं। इन बाधाओं में लोगों में स्वार्थ लोलुपता, चाटुकारिता, स्वजाति विद्वेष तथा दासत्व एवं हीनता की भावना के चलते आत्मविश्वास व आत्मगौरव का अभाव तथा अस्पृश्यता, जात–पाँत एवं ऊँच–नीच के भेदभाव के चलते एकता के अभाव के अतिरिक्त समाज में नारी की हीन दशा एवं अशिक्षा मुख्य थीं। ऐसे में राष्ट्रीय पुनरोत्थान के लिए इन बाधाओं को दूर किया जाना जरूरी था। जिसके लिये स्वामीजी अपने सहयोगियों एवं शिष्यों के साथ प्राणपण से जुटे रहे। अगर हम देश–विदेश में दिये गये उनके व्याख्यानों, प्रवचनों, संवादों–चर्चाओं एवं लोगों को लिखे गये पत्रों का अवलोकन करें तो देखेंगे कि इनमें उन्होंने प्रधान रूप से इन बाधाओं को पार करने के लिये लोगों का जोरदार शब्दों में आह्वान किया है।

स्वामी जी का मानना था कि– वेदांत के सिद्धांत पर आधारित उनकी एक बुनियादी मान्यता यह थी कि व्यक्ति अपनी समस्या स्वयं हल करता है। दूसरा कोई उसकी समस्या हल नहीं कर सकता है। दूसरा उसके लिए अधिक से अधिक यही कर सकता है कि उसकी आंतरिक शक्ति को जाग्रत करने और उसे उन अधिकारों व सुविधाओं को दिलाने में मदद करे जिनसे अतीत में उसे वंचित कर दिया गया था। इस सैद्धांतिक मान्यता के आधार पर कहा जा सकता है कि अस्पृश्य, नारी एवं शूद्र की दासता को कोई दूसरा दूर नहीं कर सकता है। इस कार्य में कोई दूसरा अधिक से अधिक उनकी यही मदद कर सकता है कि वह उन्हें यह अहसास करा दे कि वे दास हैं। इसके अलावा उनकी बाहरी इमदाद अगर कुछ हो सकती है तो वह यही हो सकती है कि उन्हें उनके वे अधिकार दिला दिये जाएँ जिनसे अतीत में उन्हें वंचित कर दिया गया था। उदाहरण के लिए महिलाओं को अगर यह अहसास करा दिया जाए कि तुम दासतापूर्ण जीवन जी रही हो और यह कि दासता तुम्हारी नियति नहीं है तो वे अपनी दासता से मुक्ति के लिए स्वयं उठ खड़ी होंगी और जब वे स्वयं अपनी दासता के विरुद्ध खड़ी होंगी तो दुनिया की

कोई ताकत उन्हें मुक्त होने से रोक नहीं सकती है। बाहरी इमदाद उनको अधिक से अधिक यही दी जा सकती है कि उन्हें शिक्षा एवं आत्म विकास से संबंधित अधिकार एवं सुविधाएं मुहैया करा दी जाएँ जिनसे अतीत में उन्हें वंचित कर दिया गया था, बाकी काम वे स्वयं कर लेंगी।

विवेकानंद राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए समाज का पुनर्निर्माण और समाज व राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए व्यक्ति का पुनर्निर्माण जरूरी मानते थे। साथ ही, उनका मानना था कि व्यक्ति का पुनर्निर्माण वेदांत के अद्वैतवाद को समझने और उसका साक्षात्कार करने एवं उसे जीवन में उतारने से ही संभव है। आत्मा की महत्ता और उसकी अनंत शक्ति को समझाने से व्यक्ति में आत्मश्रद्धा व आत्मविश्वास का भाव जाग्रत होता है जो उसे दृढ़ इच्छाशक्ति संपन्न व मजबूत बनाता है और मजबूत व्यक्तियों से मजबूत राष्ट्र का निर्माण होता है।[4] विवेकानंद का कहना है कि ''हम 37 करोड़ भारतवासी हजारों वर्ष से मुठीभर विदेशियों के द्वारा शासित और पददलित क्यों है? इसका यही कारण है कि हमारे ऊपर शासन करने वालों में आत्मश्रद्धा थी, पर हममें वह बात नहीं थी।'' जिसे दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने लोगों का आह्वान किया कि आत्मश्रद्धा के बल से अपने पैरों पर आप खड़े हो और शक्तिशाली बनो। इस समय हमें इसकी आवश्यकता है।

का कहना है कि "एक जीवित प्राणी चाहे वह एक छुद्र कीट ही क्यों न हो एक निर्जीव वस्तु चाहे वह एक भीमकाय यंत्र ही क्यों न हो, से श्रेष्ठ इसलिए है, क्योंकि वह स्वाधीन है। उसमें बुद्धि है। वह जड़ नियमों से बँधा नहीं है। स्वाधीनता मनुष्य को जड़ यंत्रों से पृथक् करती है। स्वाधीनता ही मानव का चरम लक्ष्य है। स्वाधीनता ही उसका अभीष्ट है। इसकी प्राप्ति के लिए वह सतत प्रयत्नरत रहता है। उसकी सभी चेष्टाओं का उद्देश्य उत्तरोतर स्वाधीन होना है जहाँ कहीं भी जीवन है वहीं मुक्ति का अनुसंधान है। मुक्ति के लिए प्रयत्न है।'' उनका मानना था कि स्वतंत्रता व्यक्ति के विकास का मूल आधार है। जब व्यक्ति का विकास होगा तो समाज और राष्ट्र का भी विकास होगा। व्यक्ति जब सशक्त होगा तो समाज और राष्ट्र भी सशक्त होगा। इसके बरक्स स्वतंत्रता के अभाव में व्यक्ति का विकास अवरुद्ध होगा और यदि व्यक्ति का विकास अवरुद्ध होगा तो समाज और राष्ट्र का विकास भी अवरुद्ध होगा। उनका कहना था कि ''हमारी जाति अपनी स्वतंत्र सत्ता खो बैठी है और यही भारत की सारी आपत्ति का कारण है। हमें जाति को उसकी खोई हुई स्वतंत्रता वापस देनी होगी और निम्न जातियों को उठाना होगा।'' अपने एक शिष्य को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं कि विचार और कार्य की स्वतत्रता ही जीवन, उन्नति और कुशलक्षेम का एकमात्र साधन है। जहाँ स्वतंत्रता नहीं है उस मनुष्य, जाति या राष्ट्र की अवनति निश्चित होगी।

विवेकानंद की दृष्टि में स्वतंत्रता जहाँ व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के विकास की बुनियादी जरूरत है वहीं शिक्षा उनकी उन्नति का आधार है, क्योंकि शिक्षा ही व्यक्ति की अंतर्निहित शक्तियों को विकसित करती है और इस प्रकार समाज व राष्ट्र की प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है। उनकी दृष्टि में शिक्षा कोई वस्तु, सामग्री या धन–दौलत नहीं है जो किसी व्यक्ति को दे दी जाए और वह धन संपन्न की तरह ज्ञान संपन्न हो जाए बल्कि यह तो एक विधा या माध्यम है जो व्यक्ति की आंतरिक क्षमताओं को विकसित करती है। उनका कहना था कि वेदांत का यह सिद्धांत है कि मनुष्य के अंदर ज्ञान का समस्त भंडार निहित है। केवल उसके जागरूक होने की आवश्यकता है और यही आचार्य का काम है । उनका मानना था कि भारतीयों की दुर्दशा व पिछड़ेपन जैसी अनेक समस्याओं की जड़ अशिक्षा है। यूरोपीय देशों के अपने अनुभव के आधार पर वे कहते हैं कि "यूरोप के बहुत से नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों की भी अमनचौन और विद्या को देखकर गरीबों की बात याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अंतर क्यों हुआ? जवाब पाया–शिक्षा"। इसलिए वे भारत के हर गाँव में लोगों को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराना चाहते थे। इस संदर्भ में मैसूर के महाराजा को उन्होंने इस आशा से कि अज्ञानता में गड़े हुए दुःख झेल रहे भारत के लाखों नर–नारियों के लिए उनके मन में सहानुभूति पैदा हो और वे इस दिशा में कुछ पहल करें एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि "अपने निम्न श्रेणी वालों के प्रति हमारा एकमात्र कर्तव्य है उनको शिक्षा देना। भारत में गरीबी ऐसी है कि गरीब लड़के पाठशाला में आने की बजाय खेतों में अपने माता–पिता को मदद देना या दूसरे किसी उपाय से रोटी कमाने का प्रयत्न करना अधिक पसंद करेंगे। अच्छा यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आए तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास क्यों न जाए। यदि गरीब लड़का शिक्षा के मंदिर तक न आ सके तो शिक्षा को ही उसके पास जाना चाहि।

विवेकानंद आत्मविश्वास को बहुत महत्त्व देते थे। उनका कहना था कि जिस क्षण व्यक्ति या राष्ट्र आत्मविश्वास खो देता है, उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जाती है। बहुत स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा कि विश्वास–विश्वास। अपने आप पर विश्वास...यही उन्नति का एकमात्र उपाय है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि राष्ट्र–निर्माण में स्वामीजी युवकों की भूमिका को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनका कहना था कि केवल मनुष्यों की आवश्यकता है और सब कुछ हो जाएगा, किंतु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धा–सम्पन्न और अंत तक कपटरहित युवकों की। इस प्रकार के सौ नवयुवकों से संसार के सभी भाव बदल दिए जा सकते हैं।

स्वामी विवेकानंद राष्ट्र को पुनर्जीवित व पुनर्निर्मित करना चाहते थे ताकि वह अपने अतीत के गौरव को पुनः प्राप्त कर सके। इसके लिए वे पहले व्यक्ति व समाज, जो दीर्घकालीन दासता के चलते

दीन–हीन, निराश व निरुपाय के रूप में जीवन व्यतीत कर रहे थे, को जाग्रत कर साहसी, पौरुषवान व कर्मठ बनाना चाहते थे। इस दुरुह व दुर्लभ लक्ष्य की प्राप्ति उनकी दृष्टि में वेदांत धर्म के पालन व समाज की सेवा के माध्यम से ही हो सकती थी, क्योंकि उनकी दृढ़ मान्यता थी कि भारत की प्राणशक्ति धर्म है। धर्म के मार्ग पर चलकर ही अतीत में वह विश्व के शिखर पर पहुँचा था और अपने धर्म की शक्ति के कारण ही जहाँ दुनिया की अन्य प्राचीन सभ्यताएँ विनिष्ट हो गईं वहाँ अनेक आपदाओं, आक्रमणों, पराजयों व पराधीनताओं को झेलते हुए भी वह अपनी रक्षा कर सका। इसीलिए उसका पुनर्जीवन व पुनरुत्थान भी धर्म के आधार पर ही होगा न कि राजनीतिक अथवा वाणिज्यिक विस्तारवाद की भित्ति पर। उनका कहना था कि "भारत परमात्मा की खोज में लगा रहता है तो वह कभी मिट नहीं सकता। किंतु यदि वह राजनीति और समाज–संघर्ष में पड़ता है तो नष्ट हो जाएगा।'' ।

दरअसल, विवेकानंद न तो राजनीतिक व्यक्ति थे और न ही उनकी कोई राजनीतिक आकांक्षा थी। वे तो मानवता का उद्धार चाहते थे और चाहते थे कि अतीत की भाँति इस कार्य में भारत आगे बढ़कर पहल करे। किंतु इसके लिए जरूरी था कि वे भारतीयों को जाग्रत, उन्नत व सशक्त बनाएँ। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने भारत में वेदांत धर्म की पुनर्स्थापना के साथ विश्व में उसके प्रचार–प्रसार के लिए कार्य किया जिसमें उनके भारतीय शिष्यों और सहयोगियों के अलावा उनके यूरोपीय व अमेरिकी शिष्यों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। रोमा रोला के शब्दों में, ''अंग्रेजों का विरोध करके भारत की राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने का लक्ष्य उनके मन में नहीं था। वे ब्रितानी सहयोग के वैसे ही आकांक्षी थे जैसे विश्व सहयोग के थे और सच तो यह है कि इंग्लिस्तान ने उनके कार्य में हाथ बँटाया–राज्य ने तो नहीं, पर लंदन और न्यूयॉर्क के आंग्ल सेक्शन शिष्यों ने विवेकानंद को अपनी आंतरिक श्रद्धा दी और इतना अर्थ साधन भी जुटाया कि जमीन खरीदकर बेलूर के अनुपम मठ का निर्माण संभव हो सका।''

वैसे यह सही है कि विवेकानंद का न तो कोई राजनीतिक लक्ष्य था और न ही उन्होंने कोई राजनीतिक संगठन बनाया या किसी राजनीतिक आंदोलन का सूत्रपात किया। किंतु इससे बड़ा सच यह है कि उन्होंने आध्यात्मिक व सामाजिक पुनर्जागरण तथा उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक देश के कोने–कोने तक जाकर जो राष्ट्रव्यापी जनजागरण आंदोलन चलाया उसकी आधारभूमि पर ही उनकी मृत्यु के साल दो साल के भीतर तिलक व गाँधी ने राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती से खड़ा किया। भविष्य में भारत की प्रगति की इबारत राजनीतिक या वाणिज्यिक या किसी अन्य विधा पर लिखी जाएगी इस संबंध में फिलहाल कुछ कहना मुश्किल है। किंतु पिछले सौ–सवा सौ साल के इतिहास पर अगर हम

गौर करें तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि देश की आजादी और प्रगति का लीड मॉडल राजनीतिक भले रहा हो किंतु अतीत की भाँति इसको भी आत्मिक शक्ति अभी तक प्रधानतया धर्म से ही प्राप्त होती रही है।

स्वामी विवेकानंद राष्ट्रीय आंदोलन के सूत्रधार भले न रहे हों, किंतु वे इसके आध्यात्मिक जनक थे इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता और इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि वे स्वातंर्त्योत्तर भारत के आध्यात्मिक प्रणेता, प्रगति के प्रेरणास्रोत और पथ–प्रदर्शक रहे और आगे भी रहेंगे। कठोपनिषद और मण्ड्कोपनिषद के उनके ये संदेश– 'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान् निबोधत' तथा 'सत्यमेव जयते नानृतम' भारतीयों को सदैव सत्य की राह पर सतत आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रंगनायानंद : 2012
2. विवेकानंद : 2011 अ : 9
3. विवेकानंद : 1989 : 5 : 182
4. विवेकानंद 1989 : 5 : 86
5. विवेकानंद 1989 : 2 : 292
6. विवेकानंद 1989 : 2 : 292
7. तेजसानंद 2012 : : 48
8. विवेकानंद, सद तोमर 2003 : 12
9. विवेकानंद : 2012 ब : 40
10. विवेकानंद : 2012 ब : 39
11. विवेकानंद सद तोमर 2013 ब : 124
12. विवेकानंद 2012 : : 21
13. विवेकानंद : 2012 : 23
14. रामारोलां, 1989 : 151
15. रोमारोलां, : 1989 : 131–32